वर्तमान में योगवासिष्ठ शिक्षा की प्रासंगिकता
एक समग्र दृष्टिकोण

दीप्ति वाजपेयी*

शिक्षा समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। शिक्षा ही वह ज्ञान ज्योति है, जो व्यक्ति के अंतस के तमस को नष्ट कर उसे विवेक शक्ति से आप्लावित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में निःसंदेह भारत के उज्ज्वल भविष्य की अनंत संभावनाएँ निहित हैं। यह शिक्षा नीति, शिक्षार्थी विकास की अनंत संभावनाओं को साथ लेकर आई है। अब सबकी ज़िम्मेदारी है कि हम इस नीति का सुचारू रूप से क्रियान्वयन करें। इस नीति में, शिक्षार्थियों को भारत की समृद्ध, बहुविध, प्राचीन संस्कृति तथा ज्ञान प्रणालियों का बोध कराना एवं प्राच्य ज्ञान से जोड़ने हेतु बल दिया गया है। इस दृष्टि से, भारतीय प्राचीन ग्रंथों में निहित शैक्षिक संकल्पनाओं का अध्ययन एवं चिंतन आवश्यक हो जाता है। इसी कड़ी में, योगवासिष्ठ जैसे प्राचीन ग्रंथ के शैक्षिक निहितार्थों से प्रेरणा लेना, एक समग्रता पूर्ण शैक्षिक ढाँचे के निर्माण हेतु आवश्यक प्रतीत होता है। अतः इस लेख में योगवासिष्ठ की वर्तमान में प्रासंगिकता को दर्शाते हुए शिक्षार्थी एवं शिक्षा प्रक्रिया की संकल्पना को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

शिक्षार्थी शिक्षा-प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। शिक्षा का उद्देश्य बच्चे का अभ्युदयगत तथा निःश्रेयसात्मक विकास करना है। इस दृष्टि से शिक्षक, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधियाँ, शैक्षिक परिवेश इत्यादि शिक्षा प्रक्रिया के समस्त अंग शिक्षार्थी के समग्र विकास के प्रति समर्पित हैं। प्रायः शिक्षा से सरोकार रखने वाले व्यक्तियों ने बच्चे को शिक्षा प्रक्रिया का केंद्र बिंदु माना है।

योगवासिष्ठ के अनुसार शिक्षा, शिक्षार्थी के लिए है। शिक्षार्थी को समस्याओं, तनावों, किंकर्तव्यविमूढ़ता, अंतर्द्वंद, दुःखानुभूति तथा अविद्या से मुक्त करना शिक्षा का कार्य है। आद्यावस्था में वैरागी तथा अकर्मण्य व्यग्रचित्त राम को गुरु वशिष्ठ शिक्षा द्वारा ज्ञान व कर्तव्य का बोध कराते हैं, जिससे श्रीराम उत्तरोत्तर उत्तम शिक्षा की भूमिका के निर्वहन योग्य हो जाते हैं। योगवासिष्ठ की शिक्षार्थी संकल्पना को तीन बिंदुओं में वर्गीकृत किया गया है, जो इस प्रकार हैं—

शिक्षार्थी की शारीरिक ऐन्द्रिय संस्कृति का निर्माण (संतुलित उपभोग)

पाश्चात्य शिक्षा शिक्षार्थी की शारीरिक तथा ऐंद्रिय संस्कृति भोग के उत्कर्ष को सूचित करती है। 'खाओ, पिओ व मौज करो' के सिद्धांत का अनुपालन करते हुए विदेशी शिक्षा शिक्षार्थी के शरीर व इंद्रियों को सांसारिक विषय भोगों का अधिकतम उपभोग करने हेतु अनुकूल बनाने का प्रयास करती है। सत्यम,

*प्रोफ़ेसर, संस्कृत विभाग, कु.मा.राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर 203207

शिवम और सुंदरम रूपी त्रि-भारतीय मूल्यों में से मात्र सुंदरम को महत्व देते हुए पाश्चात्य दृष्टिकोण मानव की समस्त इंद्रियों को सौंदर्योन्मुखी करने पर बल देता है। इससे तात्पर्य बच्चे की इंद्रियों को इस दृष्टिकोण के साथ प्रशिक्षित करना है कि उसके चक्षु सुंदर का अवलोकन करने की, श्रोत सुवचनों को श्रवण करने की, जिह्वा सुंदर (सुस्वादिष्ट) का पान करने की, नासिक सुगंध को ग्रहण करने की व त्वचा सुकोमल का स्पर्श करने की अभिलाषा करें, किंतु इस विदेशी विचारधारा में जीवन के सत्यम व शिवम दो महत्वपूर्ण मूल्यों को सर्वथा उपेक्षित कर दिया गया है जिससे जीवन में असंतुलन उत्पन्न हो गया है।

विचारणीय है कि वर्तमान भारतीय शिक्षा भी उपर्युक्त पाश्चात्य विचारधारा का अनुसरण करके धनार्जन का लक्ष्य लेकर चलती है, जबकि इस लक्ष्य से भोग का उद्‌बोधन मात्र ही ध्वनित होता है। 'सर्वे गुणः कांचनमाश्रयन्ते' के अनुसार वर्तमान शिक्षा शिक्षार्थी के शरीर व इंद्रियों को इस योग्य बनाने का प्रयास करती है कि यथाशक्ति धनार्जन कर सांसारिक भोगों का अधिकतम भोग कर सके। इस एकांगी लक्ष्य को ही चरमोत्कर्ष मान लेने पर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के संबंधों में असंतुलन व्याप्त होता जा रहा है। इसके साथ ही सत्य व कल्याण की भावना अपने न्यूनतम स्तर तक पहुँच गयी है। भारतीय परंपरा आदिकाल से ही भोग के संतुलन पर बल देती है। सत्य की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य है, यही कल्याणकारी है। चूँकि शरीर के रहते हुए भोग भी आवश्यक है, अतः इसकी भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती है। किंतु यह भोग विवेक संगत तथा नियंत्रित होना चाहिए। भोग उतना ही आवश्यक है, जितना लक्ष्य प्राप्ति में सहायक रहे। जब वह सत्यानुभूति में बाधक हो जाता है, तो अनर्थकारी बन जाता है।

योगवासिष्ठकार इसी भारतीय परंपरा का समर्थन करते हुए कहते हैं कि जैसे वृक्ष सीचने पर अनंत शाखा युक्त होता है, ऐसे ही मूर्ख जन भोग की इच्छा से अनेक प्रकार की शारीरिक व मानसिक व्यथा को प्राप्त होते हैं।

शतशास्त्रात्वमायाति सेकेनविटपीयथा।
अनंताधित्वमायासिशठभोगेच्छयतथा।।

आत्रेय, 1957

अतः गुरु वशिष्ठ, शिक्षार्थी से संतुलित भोग की संस्कृति को विकसित करना चाहते हैं। जीवनयापन के लिए न्यूनतम भोग की आवश्यकता है, उसका त्यागपूर्वक उपयोग करना चाहिए, क्योंकि जीवन भोग करने के लिए नहीं है। सांसारिक विषय भोग क्षणिक व अंततः दुःखप्रदायी है।

सर्वास्या एव पर्यन्ते सुखाशायाश्च संस्थित्।
मालिन्यं दुःखमप्येवं ज्वालाया इव कज्जलम्।।

आत्रेय, 1957

भोगा विषयसम्भोगा भोगा इव फणावताम्।
दशन्त्येव मानक्स्पृष्टा दृष्ट नष्टाः प्रतिक्षणम्।।

आत्रेय, 1957

अतः विषय भोगों में संतुलन होना अति आवश्यक है। वस्तुतः भोगों की इच्छा होना ही बंधन है और उसका त्याग ही मोक्ष कहलाता है।

जब तक संसार को नष्ट करने वाली भोगों के प्रति विरक्ति मन में उत्पन्न नहीं होती, तब तक विजय प्राप्त कराने वाली निवृत्ति की प्राप्ति नहीं होती है।

न भोगेष्वरतिर्यावज्जायते भवनाशिनी।
न परा निर्वृतिस्तावत्प्राप्यते जयप्रदायिनी।।

आत्रेय, 1957

अतः शिक्षार्थी के लिए आवश्यक है कि विषयों का संतुलित उपभोग करें। यदि वह ऐसा करेगा तो भोगों का आकर्षण लक्ष्य प्राप्ति में बाधक नहीं बनेगा।

मानसिक संस्कृति का विकास (संवेगादि संयम)

मन, मानव शरीर का सर्वाधिक शक्तिशाली अंग है। मानव का शरीर व इंद्रियाँ उसके मन द्वारा संचालित होती हैं। वस्तुतः मानव मनोमय है अर्थात जैसा मानव का मन होता है, वैसा ही वह बन जाता है। समस्त दुःख और अवस्थाओं को बनाने और भोगने वाला मन ही है।

सर्वेषु सुखदुःखेषु सर्वासु कलनासु च।
मनः कर्तृमनो भोक्तृमानसं विद्धिमानवम्।।

आत्रेय, 1957

मोक्ष के अलौकिक आनंद की अनुभूति करने के लिए भी पुरुषार्थी मन की ही साधना करते हैं। क्योंकि मोक्ष प्राप्ति मन के शुद्ध होने पर संभव है। अतःयोगवासिष्ठीय शिक्षा शिक्षार्थी के मानसिक विकास पर अत्यधिक बल देती है। 'मन के हारे हार है मन के जीते जीत।' इस लोकोक्ति का पोषण करते हुए योगवासिष्ठ में शिक्षार्थी के मानसिक विकास का समर्थन किया गया है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्य जैसे मानवीय संवेग मन को वश में कर लेने पर नियंत्रित हो जाते हैं तथा मानव द्वारा स्वयं मन के वशीभूत हो जाने पर यह संवेग अतिवादी हो जाते हैं। वशीभूत हो जाने पर मानव इंद्रिय तुष्टिकरण को ही जीवन का चरम ध्येय मानकर इस संसार रूपी इंद्रजाल में आनंद प्राप्त करने का असफल प्रयास करता रहता है और वास्तविक आनंद स्रोत (ब्रह्म साक्षात्कार) से सर्वथा दूर हो जाता है। वस्तुतः इस भ्रमित करने वाले, घूमने वाले, संसार रूपी मायाचक्र की नाभि मन है।

अस्य संसाररूपस्य मायाचक्रस्य राघव।
चितं विद्धि महानाभिं भ्रमतो भ्रमदायिनः।।
तस्मिन् द्रुतमवष्टब्धे धिया पुरुषयत्नतः।
गृहीतनाभि वहनान्माया चक्रं निरुध्यते।।

आत्रेय, 1957

इस मन रूपी नाभि को बुद्धि, पुरुषार्थ व संवेगों के नियंत्रण द्वारा ज़ोर से पकड़कर रोक लेने पर मायाचक्र की गति रुक जाती है। अतः शिक्षार्थी की मानसिक संस्कृति का विकास उसके संवेगादि संयम के लिए आवश्यक है, जिससे वह लक्ष्योन्मुखी जीवन का आचरण कर सके।

बौद्धिक संस्कृति का विकास (विवेकाधारित सत्यनिष्ठा)

योगवासिष्ठ में बुद्धि को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि परम चित्त (ब्रह्म) जब एक परिमित रूप का धारण कर विषयों की भावना करके, यह अमुक विषय है तथा वह अमुक विषय, इस निश्चय को धारण कर लेता है तो उसे बुद्धि संज्ञा से अभिहित किया जाता है अर्थात इस पदार्थ का यह स्वरूप है, इस प्रकार के स्पष्ट ज्ञान के कारण इसका नाम बुद्धि है।

भावनामनुसंधानं यदा निश्चत्यि संस्थिता।
तदैषा प्रोच्यते, बुद्धिरियत्ता ग्रहण क्षमा।।

आत्रेय, 1957

इदमित्थ मितिस्पष्ट बोधाद् बुद्धिरिहोच्यते।।

आत्रेय, 1957

सत्यासत्य निर्धारिणी बुद्धि (प्रज्ञा) मानव जाति की सर्वोत्कृष्ट विशेषता है। इस प्रज्ञाजनित विवेक के द्वारा ही मानव शुभ-अशुभ, सत्य-असत्य व पाप-पुण्य में भेद कर अकरणीय का त्याग तथा करणीय को करने हेतु प्रेरित होता है। विवेक बुद्धि ही वह शक्ति है, जो निष्कर्ष निकाल सकती है और उचित तथा सत्य का निर्णय कर सकती है। अतः *योगवासिष्ठ* में शिक्षार्थी के बौद्धिक उन्नयन की संकल्पना की गई है। विवेक शक्ति के द्वारा शिक्षार्थी अपने लिए जिस सत्य का अन्वेषण करता है, वह उस पर चिर निष्ठावान रहता है। सत्य अपरिवर्तनशील व शाश्वत है। किंतु उसका अन्वेषण शिक्षार्थी को विवेकशील प्रज्ञा द्वारा स्वयं करना पड़ता है। शिक्षार्थी संकल्पना में बालक का बौद्धिक विकास इसलिए आवश्यक माना गया है क्योंकि बुद्धिमान व्यक्ति शास्त्राशून्य व सहाय रहित भी हो तो भी, ज्ञान मात्र से संसार सागर से पार उतरता ही है। प्रज्ञावान असहाय होकर भी कार्य के अंत को प्राप्त होता है और अज्ञानी, बलवान होकर भी नष्ट हो जाता है।

प्रज्ञावान सहायोपिकार्यातंमधि गच्छति।
दुष्प्रज्ञः कार्यमासाद्य प्रधानमपि नश्यति।।

आत्रेय, 1957

दुरूत्तरायाविपदोदुःखकल्लौल संकुलः।
तार्यते प्रज्ञयाताम्योनावापद्मयों महामते।।

आत्रेय, 1957

अर्थात दुःख रूपी कल्लोल से पूर्ण कठिनता से तरने योग्य जो विपत्ति रूपी नदियाँ हैं, वे दुःख रूपी नौका से पार की जाती हैं, न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से वरन सांसारिक अभ्युदय के लिए भी बुद्धि की अपेक्षा है। बुद्धि के प्रभाव से सामान्य मनुष्य भी राजत्व पदवी को प्राप्त हुए हैं। स्वर्ग और मोक्ष की योग्यता भी बुद्धिमान मानव को ही प्राप्त होती है।

सामान्यैरपि भूपत्वं प्राप्तं प्रज्ञावशा नरैः।
स्वर्गापवर्ग योग्यत्वं प्राज्ञस्यैवेदृश्यते।।

आत्रेय, 1957

अतः वशिष्ठ कहते हैं कि अतुल और उच्च ब्रह्म पद को प्राप्त करने के लिए शिक्षार्थी को विवेक शिक्षण से शुद्ध करना चाहिए क्योंकि धान्यादि फल को चाहने वाला किसान सर्वप्रथम हल से पृथ्वी को शुद्ध करता है।

योगवासिष्ठीय शिक्षार्थी संकल्पना में बच्चा की शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक संस्कृति के उन्नयन पर बल दिया गया है। बच्चा इंद्रिय, मन, बुद्धि व आत्मा का योग है। अतः आत्मिक उत्कर्ष तक पहुँचने के लिए शिक्षार्थी के शरीर, मन व बुद्धि रूपी सोपानों का सुदृढ़ होना आवश्यक है।

वर्तमान में योगवासिष्ठ शिक्षा की भूमिका

वर्तमान समय में शिक्षा के संपूर्ण शैक्षिक ढाँचे को शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास का आधार बनाना होगा। चूँकि बच्चा इंद्रिय मन, बुद्धि व आत्मा का योग है, अतः इंद्रियों के संयमन हेतु योग को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर जोड़ना होगा। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* में भी भारतीय प्राच्य ज्ञान को पाठ्यक्रम में जोड़ने पर बल दिया गया है। योग भारतीय प्राचीन ज्ञान का अनुपम उदाहरण है। *योगवासिष्ठ, गीता* व *योगदर्शन* इत्यादि ग्रंथों में भी योग की महत्ता को

मुक्त कंठ से स्वीकार किया गया है। योग न केवल शरीर एवं मन को सुदृढ़ बनाने का कार्य करता है, अपितु योग व्यक्ति को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने का भी श्रेष्ठ माध्यम है।

इसके अतिरिक्त *योगवासिष्ठ* में मूल्योन्मुखी शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। मूल्य एवं नैतिक आचरण ही मनुष्य को मानव की श्रेणी में लाते हैं। नैतिकता और मूल्यों से रहित विकास, विनाश की श्रेणी में आता है। स्मरण रहे कि जीवन की यात्रा बड़ा आदमी बनने की नहीं, वरन आदर्श मानव बनने की है। योगवासिष्ठ में गुरु वशिष्ठ द्वारा जिन नैतिक आचरण और मूल्यों की शिक्षा शिष्य राम को दी गई, इन्हीं मूल्योन्मुखी शिक्षा ने एक सामान्य राजपुत्र को आदर्श राजा राम बना दिया। वर्तमान अंध प्रतिस्पर्धा से युक्त युवा पीढ़ी को नैतिक एवं मूल्य शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। जिसका प्रारंभ पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से ही करना होगा। शिक्षक का नैतिक आचरण शिक्षार्थियों के लिए प्रेरणा का कार्य करता है। शिक्षकों को अपने शिक्षार्थियों के सम्मुख आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए, क्योंकि अप्रत्यक्ष शिक्षा प्रत्यक्ष शिक्षा से अधिक प्रभावी कार्य करती है। शिक्षार्थियों का आचरण भी मूल्यांकन का आधार होना चाहिए। मात्र परीक्षा अर्थात उत्तर पुस्तिका में लिखे उत्तरों से शिक्षार्थी का मूल्यांकन व्यक्तित्व के अन्य पक्षों को उपेक्षित कर देता है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* में भी सतत मूल्यांकन की संस्तुति की गई है। इसमें आंतरिक तथा बाह्य दोनों ही मूल्यांकन आवश्यक हैं। संपूर्ण सत्र में शिक्षार्थी का कार्य व्यवहार, उसका आचरण एवं मानवीय गुणों की परख आंतरिक मूल्यांकन द्वारा ही संभव है, जो आंतरिक परीक्षक के रूप में उन्हें पढ़ाने वाले शिक्षकों के माध्यम से ही की जा सकती है।

योगवासिष्ठ के अनुसार शिक्षार्थी में विवेक बुद्धि का विकसित होना अति आवश्यक है। विवेक युक्त मानव दूरदर्शी होता है तथा क्षणिक एवं तात्कालिक लाभ के स्थान पर दूरगामी परिणामों पर विचार करने के उपरांत ही कार्य का निर्णय लेता है। वर्तमान समय में विवेक युक्त प्रज्ञा की अत्यधिक आवश्यकता है। विकास के नाम पर विनाश को आमंत्रण देना तथा तात्कालिक लाभ के लिए भविष्य को अंधकारमय बना देना आज मानव की सहज प्रवृत्ति बन चुकी है, जिसका सबसे बड़ा उदाहरण पर्यावरण असंतुलन है। असहिष्णुता और अंध प्रतिस्पर्धा भी अविवेकशील बुद्धि का ही दुष्परिणाम है। इसलिए शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जो शिक्षार्थियों में विवेक बुद्धि जाग्रत करने में सक्षम हो, जिसमें पुस्तकीय ज्ञान भी सहायक होता है। विवेक प्रज्ञा जाग्रत करने हेतु शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सैद्धांतिक स्तर की अपेक्षा व्यावहारिक स्तर पर लाना होगा। जिसके लिए पाठ्यक्रम को लिखित के समांतर प्रायोगिक भी बनाना होगा। वास्तविक परिस्थितियों में उचित-अनुचित का निर्णय कर समस्या का समाधान ढूँढ़ना ही विवेक बुद्धि जाग्रत करने का सरल माध्यम है। इसके लिए शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षार्थियों को गुरु वशिष्ठ की भाँति समस्या-समाधान हेतु वस्तुस्थिति के समस्त पक्षों तथा उसके प्रत्येक संभावित परिणामों से अवगत कराकर शिक्षार्थी को निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र छोड़ना चाहिए। ऐसा करने से शिक्षार्थी स्व-विवेक के आधार पर निर्णय लेगा और उसका उचित या अनुचित परिणाम, उसके द्वारा भविष्य में लिए जाने वाले निर्णय हेतु उसकी विवेक बुद्धि को परिष्कृत करेगा।

निष्कर्ष

समस्त शिक्षा प्रक्रिया बच्चे के समग्र विकास के प्रति समर्पित है। नवीन संदर्भों में यह माना जाता है कि शिक्षा बच्चे के लिए है न कि बच्चे शिक्षा के लिए शिक्षार्थी शिक्षा प्रक्रिया का केंद्र-बिंदु है, अतः शिक्षा में बच्चे को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है।

शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों ही सहभागी होते हैं। शिक्षण का अर्थ है, संपर्क में आना, संप्रेषण करना, किसी अनुभूति को संचालित करना व सहभागी होना, जो मात्र शाब्दिक व बौद्धिक स्तर पर न होकर अनुभूति व सूक्ष्मता के स्तर पर भी अनुभव हो। इस प्रकार शिक्षण-प्रक्रिया शिक्षार्थी व शिक्षक दोनों के मध्य चलने वाली अंतर्क्रिया है। सीखने का कार्य बच्चा स्वयं करता है, किंतु इस हेतु गुरु की सहभागिता अनिवार्य है। इस लेख के आधार पर कहा जा सकता है कि *योगवासिष्ठ* में शिक्षार्थी के चतुर्दिक विकास (इंद्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा) पर बल दिया गया है। तदनुरूप *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* में भी बच्चे के चतुर्मुखी विकास की बात कही गई है। प्राचीन भारतीय शिक्षा में लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के संतुलन को स्वीकार किया गया था और यही कारण था कि तात्कालिक मानव, मूल्योन्मुखी एवं संयमित जीवन व्यतीत कर रहा था। जो प्रकृति के संरक्षण व राष्ट्र के संवर्धन हेतु प्रयासरत था, जिसके कारण भारत विश्व गुरु कहलाता था। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* में पुनः भारत को विश्व गुरु बनाने का संकल्प निहित है। यदि हमें इस संकल्प को पूर्ण करना है तो *योगवासिष्ठ* के शैक्षिक निहितार्थों के आधार पर शिक्षार्थी विकास का वातावरण सृजित करना होगा, तभी भारत का युवा उच्च आदर्शों से युक्त होगा एवं भारत का विश्व गुरु बनने का संकल्प अवश्य पूर्ण होगा।

संदर्भ

आत्रेय, भीखनलाल. 1957. *वासिष्ठ दर्शनसार*. तारा प्रिंटिंग प्रेस, बनारस.

———. 1957. *योगवासिष्ठ और उसके सिद्धांत*. तारा प्रिंटिंग प्रेस, बनारस.

दशोरा, नंदलाल. 2017. *योगवासिष्ठ महारामायण*. रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार.

द्विवेदी, ठाकुर प्रसाद. 2016. *योगवासिष्ठ महारामायणम्*. चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली.

मालवीय, सुधाकर. 2001. *योगवासिष्ठ*. भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ.

वाजपेयी, दीप्ति. 2018. *योगवासिष्ठ के दार्शनिक एवं शैक्षिक सिद्धांत*. नवभारत प्रकाशन, दिल्ली.

शर्मा, श्रीराम आचार्य. 1972. *योगवासिष्ठ—प्रथम खंड*. संस्कृत संस्थान, बरेली.

सरस्वती, प्रज्ञानंद. 2013. *योगवासिष्ठ सार*. चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी.